Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies,
Online ISSN 2278-8808, SJIF 2019 = 6.380, www.srjis.com
PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL, JAN-FEB, 2020, VOL- 7/57

कथ्थक नृत्य और ठुमरी का संबंध और आज की युवा सोच

ममता झा मसराम
रिजनल आउटरिच ब्यूरो, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
केंद्रीय सदन अकुर्डी, पुणे , महाराष्ट्र-411044, mamtamakrand@yahoo.in

Abstract

कत्थक और ठुमरी का अन्योन्याश्रय संबंध है । जब भी कत्थक नृत्य पेश किया जाता तो भाव पक्ष मे ठुमरी भाव को ही सबसे ज्यादा वरीयता दी जाती थी । या फिर यू कह सकते है की कथ्थक नृत्य की प्रस्तुति ठुमरी भाव के बिना अधूरी है । लेकिन दोनों मे सामाजिक परिपेक्ष से बहुत बडा अंतर यह है कि कथक नृत्य जहां मंदिरों से शुरुआत हुआ वही ठुमरी हमेशा वेश्याओं और तवायफ़ो द्वारा गए जाने के कारण इसे सभ्य समाज में कभी स्वीकार नहीं किया, इसी कारणवश कई उपशास्त्रीय गायक, गाईकाए आज की स्थिति को लेकर काफी चिंतित है।

आज की युवा पीढ़ी में शास्त्रीय गायन या उपशास्त्रीय गायन (ठुमरी) के प्रति काफी उदासीनता देखने को मिलती है उसका मुख्य कारण यह है कि आज का समय सोशल मीडिया का है, जो भी उस पर या फिर टेलीविजन प्रसारण पर दिखाया जाता है वह सुनकर-देखकर ही बच्चे बड़े होते हैं, इसलिए कुछ ऐसे कार्यक्रम भी होने चाहिए जिससे सीखने की इच्छा जागृत हो । इसके लिए सभी कलाकार जो भी इस विधा से जुड़े हैं उन्हें राज्य सरकार द्वारा या फिर भारत सरकार से जुड़े जो भी प्रसारण होते हैं उनमें ज्यादा से ज्यादा शास्त्रीय गायन या फिर शास्त्रीय नृत्य को दिखाया जा सके ऐसी कोशिश हेतु सरकार को निवेदन करना चाहिए साथ ही साथ ज्यादा से ज्यादा कार्यक्रम का आयोजन होना चाहिए ताकि युवा उसे देख सके और उससे कुछ सीख सके । अभी के समय में शास्त्रीय गायन का कार्यक्रम बहुत कम हो गया है जिसके कारण युवा इस के रसास्वादन से अनभिज्ञ हैं, इस प्रकार कोशिश की जाए तो निसंदेह वह दिन दूर नहीं जब हमारे देश के युवा वर्ग भी इस क्षेत्र में अग्रसर होंगे और आगे बढ़ेंगे ।

Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

भारतीय नृत्य की परंपरा में कत्थक और ठुमरी के संबंध को बहुत ही प्राचीन माना गया है । परंतु कथक नृत्य पहले आया था या ठुमरी गायन का प्रचलन पहले हुआ था यह कहना अतिशय कठिन है ऐसा एक साक्षात्कार में महान कथक नृत्य के सिरमौर बिरजू महाराज जी का कहना था कि ठुमरी का स्थान नृत्य के साथ साथ गाए जाने वाले गीतों की परंपरा से है इसीलिए इसका संबंध कत्थक के साथ काफी गहरा संबंध माना जाता है । वर्तमान समय में भी कथक की प्रस्तुति में ठुमरी का महत्वपूर्ण स्थान है या यो कहे कि कथक नृत्य की संपूर्णता ठुमरी के बिना अधूरी है । उत्तर भारत मे गणिकाओ, भांड़ो तथा कथको द्वारा ठुमरी गान के साथ-साथ कथक नृत्य शैली के माधयम से उसके भवाभिव्यक्ति की परंपरा रही है । यह प्रथा कथक नर्तक नर्तकियो मे वर्तमान मे भी दिखाई देती है । वेश्या ,भांड तथा कथक वर्ग के लोगो मे नाच और गाने से पुराना संबंध रहा है । ब्रम्हपुराण, भारतनाट्यशास्त्र,चतुर्भानी, दसरूपक तथा संगीतरतनाकर ग्रंथो से इसका प्रमाण मिलता है ।1

'कथक' या 'कथिक' शब्द जातिसूचक संज्ञा है, जो की गायक, वादक तथा नर्तको की जाति विशेष के लिए प्रयोग किया जाता है । कत्थक शब्द की ऊत्पत्ति संस्कृत के 'कथ्य' शब्द से हुई है जिसका अर्थ 'कथाकार' अर्थात कथन करने वाला होता है । 'कथन करें सो कथक कहाए' यह लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है । कत्थक शब्द के संबंध में डॉ शरत चंद्र श्रीधर परांजये कहते हैं कि 'जैन कोष अभिज्ञान राजेंद्र के अनुसार' 'कथ्य' या 'कथ्थ' एक प्रकार की संगीत कृति है । महाभारत में कथित और ग्रंथिक दोनों का उल्लेख प्राप्त है और इनका कार्य स्पष्टतः प्राचीन पारंपरिक अख्यानो का प्रवचन तथा गायन से रहा है । महाभाष्य में कंस वध, और बली बंधन नामक अख्यानों को प्रस्तुत करने वाले वर्ग के लिए 'ग्रंथिक' संज्ञा दी गई है । ब्रह्म पुराण में नटगायक तथा नर्तक के साथ कत्थक वर्ग का उल्लेख है । प्रतीत होता है कि, कत्थक की परंपरा मुख्यता कथावाचक की ही रही है तथा उसकी प्रभावात्मिक्ता के लिए संगीत और नृत्याभिनय का तत्व उसमें समाविष्ट किया गया है ।2

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

डॉक्टर श्रीमति कपिला वात्स्यायन के अनुसार कथक नृत्य शैली के इतिहस के श्रोत से उदयपुर, खजुराहो और भुवनेश्वर के मंदिरो, परम्पारिक चित्रों और वैष्णव भक्ति परम्परा में ढूँढे जा सकते हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है की पहले कथक एक विशेष नृत्य के रूप मे उपस्थित था और भारतीय परम्परा व साहित्य मे जो कुछ उत्कर्ष है वो उसमे निहित था । लेकिन ऐसा भी हुआ है की किसी कलाविधा का कोइ विशिष्ट रूप परमपरा से विछिन्न होकर विकृत हो गया है और हम उसका मूल रूप भूल से गए है । कालांतर मे कथक नृत्य पर ब्रज की रासलीला का भी बहुत प्रभाव पड़ा । जिसके कारण कथक नृत्य के प्रस्तुति मे कृष्णलीला का विशेष महत्व है । कथक नृत्य के वर्तमान घराने भी इसी से प्रेरित है ।3

कथकाचार्यों के कथनानुसार लखनऊ घराने के मूल परंपरा की नीव ईश्वरी प्रसाद जी द्वारा किया गया था जिन्होंने 'कत्थक नटवरी' नृत्त के नाम से इसे जन-जन तक पहुंचाया । कहा जाता है कि स्वप्न में ईश्वरी प्रसाद जी को भगवान कृष्ण ने नृत्य के पुनरुत्थान की आज्ञा दी थी जिसका फलसवरूप ही आज कत्थक 'नटवरीनृत्य' में कृष्ण लीला और रास का स्पष्ट रूप से प्रभाव परीलक्षित होता है । रासलीला में जिस प्रकार के बोल और कविता प्रयोग किए जाते हैं ,वह आज भी कथक नृत्य में प्रचलित है । दोनों के पद संचालन, मंडलों और कृष्ण लीला संबंधी गत वालों में बहुत समानता है । कथक नृत्य और रासलीला में व्यवहार पखावज या तबले के बोलो से मुक्त परमेलु और तिहाईयो आदि के प्रयोग में भी समता दिखाई पड़ती है । अतः श्री कृष्ण दत्त बाजपेई और श्री के एस जैन का मत है कि कथक नृत्य का उद्भव और विकास ब्रज में प्रचलित रास नृत्य से हुआ है 4।

वर्तमान युग में कथक नृत्य उत्तर भारत के शास्त्रिए नृत्य के रूप में विख्यात है,और
इसकी गणना भारत के प्रमुख नृत्यो में की जाती है । इसके वर्तमान स्वरूप का विकास लखनऊ और जयपुर के नर्तकों की परंपरा से संबंधित है, जो लखनऊ और जयपुर घराने के नाम से प्रसिद्ध है । इन तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि, लखनऊ और जयपुर घरानों का आरंभ 18 वी या 19 वीं शताब्दी से माना जा सकता है । इसके पूर्व सोलहवीं शताब्दी में ही नारायण भट्ट द्वारा बृज वल्लभ नर्तक के सहयोग से रासलीला को व्यवस्थित रूप दिया जा रहा था । वर्तमान कत्थक नृत्य के लखनऊ और जयपुर घरानों के उदय के पूर्व ही रासलीला करने वाली मंडलियों के कई घराने विकसित हो चुके थे और उनके द्वारा देश के विभिन्न भागों में गान, अभिनय और नृत्यसंयुक्त कृष्णलीला का प्रदर्शन होता था । अतएव वर्तमान कत्थक नृत्य अपने पूर्ववर्ती रासलीला से अवश्य प्रभावित हुआ होगा 5।

उसी प्रकार जयपुर घराने का भी प्रारंभ लगभग 150 वर्ष पूर्व भानु जी से माना जाता है भानु जी मूलत शिव के महान भक्त थे इसीलिए जयपुर का अंग तांडव नृत्य विशेष अंग माना जाता है । कहां जाता है कि भानु जी को एक संत द्वारा शिव तांडव की शिक्षा प्राप्त हुई थी । भानु जी के पुत्र मालू जी ,मालू जी के पुत्र लालू जी और कानू जी हुए जिन्हें शिव तांडव की शिक्षा परंपरा से ही मिली थी । कानू जी ने वृंदावन आ कर शिव तांडव के अतिरिक्त नृत्य की अन्य पद्धति अपनाने का निश्चय भी किया । यहां कृष्ण भक्त के रूप में उन्होंने लास्य नृत्य को भी सिखा और उसको अपना बनाया । इस प्रकार तांडव और लास्य को दोनों अंग पर उनका समान अधिकार था । जयपुर घराने के ही महान नर्तक नारायण प्रसाद जी के पुत्र चरण गिरधर जिन का उपनाम 'चांद' था और उनके छोटे बेटे तेज प्रसाद और जिनका उपनाम 'सूरज' था दोनों युवक रंगमंच पर जयपुर घराने का प्रतिनिधित्व करते रहे । अपने युग में हरिप्रसाद और हनुमान प्रसाद की जोड़ी भी 'देव पड़ी' के नाम से विख्यात थी । जयपुर दरबार के गुणिजन खाने में दोनों नियुक्त थे । हरिप्रसाद जी की आकाश जारी और चक्करदार परने पूरी दुनिया मे प्रसिद्ध थी और हनुमान प्रसाद जी का लास्य प्रधान था इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जयपुर घराने के प्रतिनिधित्व करने वाले सभी नृत्यकारो को तांडव और लास्य दोनों ही अंग में महारत हासिल थी । 6

डॉ श्रीमती कपिला वात्सायन के शब्दों में कत्थक ने रासलीला से खड़े होने के तरीके भाव भंगिमाए, भ्रमरी आदि कई बातों को ग्रहण किया लेकिन इस सभी के साथ जब कत्थक
दरबार में पहुंचा तो उसका पूरा रूप, वेशभूषा, संगतकार, शब्दावली सभी मुस्लिम शब्द के अनुरूप हो गया, किंतु ठुमरी का स्थान हमेशा कत्थक के साथ सभी जगह सगी बहन की तरह रहा है । कथक नृत्य की जयपुरी शैली का नृत्यभाग हालांकि बेहद विकसित है तथापि लखनवी शैली नृत्य के साथ ही उच्च कोटि के भावाभिनय के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध रही है, लखनऊ शैली की इन्हीं विशेषताओं से आकृस्ट होकर जयपुर घराने के कई नर्तको ने लखनऊ घराने के स्वर्गीय जयलालजी और उनके भाई स्वर्गीय सुंदरप्रसादजी (जयपुर घराना) दोनों घरानों में समान ख्याति प्राप्त

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

की । लखनऊ घराने के महान नर्तक महाराज बिंदादीन अपने युग के अप्रतिम नर्तक और ठुमरी रचनाकार थे । उन्होने 1500 ठुमरियों की रचना की थी । उस समय के अनेक तवाइफ़ों तथा जोहरबाइ तथा गौहरजान जैसी प्रसिद्ध गाईकाओ को इन्होंने ठुमरी की शिक्षा दी थी 7।

जिस प्रकार से कथक नृत्य ने अपनी मुगल काल के समय कई उतार-चढ़ाव देखे थे उसी तरह ठुमरी को भी कभी उच्च दर्जा हासिल नहीं हुआ उसका मुख्य कारण संगीतज्ञ के कथना नुसार महफ़िलों मे वेश्याओं द्वारा किए जाने वाले भावाभिनय ठुमरी ही हुआ करते थी क्योंकि दोनों ही विधा का संबंध उत्तर भारत से है इसलिए भी ठुमरी कत्थक के बहुत करीब है । कथक नृत्य में भाव भंगिमा का विशेष महत्व है जिसे बोलचाल की भाषा में भाव बताना और गीत में निहित अर्थ की अभिव्यंजना को 'अर्थभाव' कहा जाता है । शास्त्रो में पदार्थाभिनय को नृत्य का प्रधान गुण कहा गया है । गीत में प्रस्तुत होने वाले शब्दों को 'बोल' कहा जाता है; लेकिन गीतों में रंजक स्वर समूह युक्त शब्द के अर्थ मे इसका व्यवहार किया जाता है अतः गीतों में बोलो का विशेष महत्व है । ठुमरीगान में बोल केवल महत्वपूर्ण ही नहीं अपितु उसके जीवन प्राण है । ठुमरीयो के 'बोलबनाव' और 'बोलबाट' पर आधारित भेद भी इसी तथ्य के परिचायक है । ठुमरी गाने के साथ साथ उसके बोलो का 'अर्थभाव' अर्थात पदार्थाभिनय कथक नृत्य की अन्य विशेषता है । क्योंकि ठुमरी स्त्रियोंगीत भेद है इसीलिए नृत्य के साथ इसका गान व भाव का प्रदर्शन पहले वेश्याओं द्वारा महफ़िलों में हुआ करता था । लखनऊ ठुमरी का केंद्र समझा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी ।8

कहा जाता है कि एक सैनी वंश के सुप्रसिद्ध सीतार वादक रहीमसेन के साथ लखनऊ में एक घटना का उल्लेख बताया गया है जिसमें संगीत की महफिल में स्पर्धा के भावना से प्राकृतिक भाव के लिए एक गणिका ने 'मोरा पिया जोगिया' हो गया यह ठुमरी गाते हुए अपना 200 ₹ का मूल्यवान दुपट्टा फाड़ डाला था । इसी से विदित होता है नृत्य की श्रृगारात्मक, सुकुमार या ललित विद्या के साथ गाया जाने वाला एक गीतभेद है, जिसका भाव प्रदर्शन 'कैशिक वृत्ति; के अंतर्गत आता है । तवायफ़ों को हमेशा नृत्य शिक्षा और गायन की शिक्षा संगीत और नृत्य आचार्य द्वारा ही दी जाति रही है । कौटिल्य के कथन से पता चलता है गणिका, दासी तथा अभिन्य जीवियो, नटियो को गायन, वादन, अभिन्य, लेखन, चित्रकारी, शरीर के अंगों को दबाना, श्रृंगार करना इत्यादि वैशिक कलाओ की शिक्षा योग्य आचार्यो द्वारा होता थी । ठुमरी के साथ-साथ प्रदर्शन और नृत्य की शिक्षा भी वेश्याओं को प्रसिद्ध कथक नर्तको द्वारा दी जाती थी । नृत्य तथा अंगिकाभिनय के साथ ठुमरी के अर्थ तथा भवाभिव्यक्ति की शिक्षा इन कथक आचार्यों पर निर्भर थी । स्वर संगति के लिए सारंगी वादक तथा लय ताल हेतु तबला वादक का सहयोग अपेक्षित था । इस प्रकार वैशिक संगीत मे ठुमरी को बनाने, सवारने व सजाने मे गायक,वादक तथा नर्तक इन तीनों का योगदान बराबर का था । आगे चलकर ठुमरी का विकास स्वतंत्र होने पर इन कलाकारो ने ठुमरी को अपने-अपने ढंग से ग्रहण और विकसित किया । अतः गीताभिनय यूक्त नृत्य मे भवाभिव्यक्ति का माध्यम गात्र विशेष (अंगसंचलन) और कंठ ध्वनि दोनों है । ठुमरी की भवाभिव्यक्ति हेतु जहां नर्तक और नर्तकियों को आंगिक और वाचिक दोनों प्रकार के अभिनय की सुविधा रहती है वही गायक को केवल वाचिकाभिनय पर ही निर्भर रहना पड़ता है । ठुमरी में रस रंग और भाव की प्रधानता होने के साथ-साथ रंजकता हेतु एक राग से दूसरे राग में गमन करने की छूट दी जाती है । इसी कारण ठुमरी को उपशास्त्रिय गायन के अंतर्गत रखा गया है 9।

ठुमरी की उत्पत्ति लखनऊ के वाजिद अली शाह के दरबार से मानी जाती है जबकि कुछ विद्वानों का कहना है कि उन्होंने प्रश्रय मात्र दिया है । उनके दरबार मे ठुमरी गायन नई ऊंचाई तक पहुंचा क्योंकि वे खुद 'अख्तर पिया' के नाम से ठुमरी रचना करते थे और गाते थे । हलाकी इसे मूलतः ब्रजशैली की रचना मानी जाती है । जो की अदाकारी के तौर पर पूर्वी अंग और पंजाबी अंग के ठुमरी में बांटा जाता है । पूर्वीअंग के ठुमरी के भी दो रूप है , जो लखनऊ और बनारस की ठुमरी के रूप में प्रचलित हुए है ।

वर्तमान स्थिति में अगर कत्थक और ठुमरी की तुलना की जाए तो बहुत अंतर आ चुका है । जहां कथक नृत्य दिन-ब-दिन अपनी नई नई अविष्कारक क्षमता से नई ऊंचाईओं को छू रहा है वहीं युवा पीढ़ी में ठुमरी गायन को लेकर बहुत कम रुचि देखने को मिलती है ।10

जानेमन ठुमरी गायक पंडित छन्नूलाल मिश्र के अनुसार ठुमरी गायन में आज की युवा पीढ़ी में बहुत कम दिलचस्पी है जिसके कारण सीखने का दौर बहुत ही धीमा हो गया है । वहीं कुछ वर्तमान संगीतकार ठुमरी को पश्चिमी संगीत के साथ जोड़कर ठुमरी के पारंपरिक उपकरणों के बजाय ड्रम्स, वायलिन, कीबोर्ड और गिटार के साथ-साथ

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

अफ्रीकी ड्रम जेंबे चीनी बांसुरी और पीयानिका का इस्तेमाल किया जा रहा है मतलब जो उसका मूल स्वरूप था वह पूरी तरह बदल गया है । कुछ दिनों पूर्व ही ठुमरी गायक छान्नुलाल मिश्रा जी को संगीत की सेवा के लिए जबलपुर स्थित रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय से 'डिलीट' की मानद उपाधि से नवाज़ा गया है । यह उपाधि पाने वाले बनारस घराने के वे पहले उपशास्त्रीय गायक है । ऐसे कई विद्वान और उस्ताद है जिन्हे युवा पीढ़ी को उपशास्त्रीय क्षेत्र में कम रुचि दिलचस्पी के कारण चिंता बनी हुई है कि कहीं यह विधा विलुप्त ना हो जाए ।11

इस उपशास्त्रीय कला (ठुमरी) को सुरक्षित करने हेतु हमारे संगीत आचार्यों के साथ-साथ विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं भारत सरकार द्वारा नीतियों को लाना चाहिए, जिससे आज की युवा पीढ़ी इस कला से रूबरू हो सकें , जैसे कार्यशाला का आयोजन, सेमिनार ज्यादा से ज्यादा होना चाहिय । लोगों को जागरूक करने का अभियान भी संगीत कलाकारो द्वारा होना चाहिए । विद्वानों के द्वारा यह बताने की कोशिश होनी चाहिए की यह विधा नए पीढ़ी को क्यो सीखना चाहिए और साथ ही साथ सिर्फ ठुमरी का ही कार्यक्रम जगह-जगह आयोजित किया जाना चाहिए । आज के युग में प्रचार प्रसार का सबसे आसान तरीका सोशल मीडिया है, जिसका उपयोग हम अपनी संस्कृति को बचाने के लिए कर रहे हैं, कर सकते हैं । इस प्रकार यदि कोशिश की जाएगी तो निःसन्देह ही वह दिन दूर नहीं जब ठुमरी पुनः अपनी उच्च स्थान को छूएगी और देश में नहीं अपितु विदेशों में भी लोग इस विधा को सीखने के लिए प्रेरित होंगे ।12

संदर्भ ग्रंथ सूची

क्रम संख्या

पुस्तकों के नाम

01 *1. ठुमरी की उत्पत्ति ,विकास और शैलियाँ पृ सं -277*
2. सुझाव , मदद –गुरु शमा भाटे ,पुणे
3. गुरु डॉ.लावण्या किर्ति सिह (काव्या),ललित नारायण मिथिला विश्वविध्यालय दरभंगा
02 संगीत संजीवनी पृ सं -54
03 ठुमरी की उत्पत्ति ,विकास और शैलियाँ पृ सं -283
04 कथ्थक नृत्य (लक्ष्मी नारायण गर्ग) पृ सं -29
05 ठुमरी की उत्पत्ति ,विकास और शैलियाँ पृ सं -287
06 कथ्थक नृत्य (लक्ष्मी नारायण गर्ग) पृ सं -33
07 कथ्थक नृत्य (लक्ष्मी नारायण गर्ग) पृ सं -30
08 *1. ठुमरी की उत्पत्ति ,विकास और शैलियाँ पृ सं -288*
2. सुझाव , मदद –गुरु शमा भाटे ,पुणे
3. गुरु डॉ.लावण्या किर्ति सिह (काव्या),ललित नारायण मिथिला विश्वविध्यालय दरभंगा
09 *1. उपशास्त्रीय संगीत पंजिका २००३ पृ सं -29, 57*
2. सुझाव , मदद –गुरु शमा भाटे ,पुणे
3. गुरु डॉ.लावण्या किर्ति सिह (काव्या),ललित नारायण मिथिला विश्वविध्यालय दरभंगा
10 *1. ठुमरी की उत्पत्ति ,विकास और शैलियाँ पृ सं -91*
2. कथ्थक नृत्य पृ सं -28
3. ठुमरी ,विकिपेडिया .ओआरजी
11 *1. ठुमरी ,विकिपेडिया .ओआरजी*
2. पं. छन्नुलाल मिश्रा, साक्षात्कार (अमर उजाला) ,हिन्दी दैनिक समाचार पत्र 26/05/2014
12 *1. सुझाव , मदद –गुरु शमा भाटे ,पुणे*
2. गुरु डॉ.लावण्या किर्ति सिह (काव्या),ललित नारायण मिथिला विश्वविध्यालय दरभंगा
3. साक्षात्कार-पं छन्नुलाल मिश्रा
4. स्वतः अनुभव

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies